सितम्बर 2016 मूल्य 15 रुपये

रूपरेखा

सदाचार ~ सद्विचार ~ सत्संस्कार

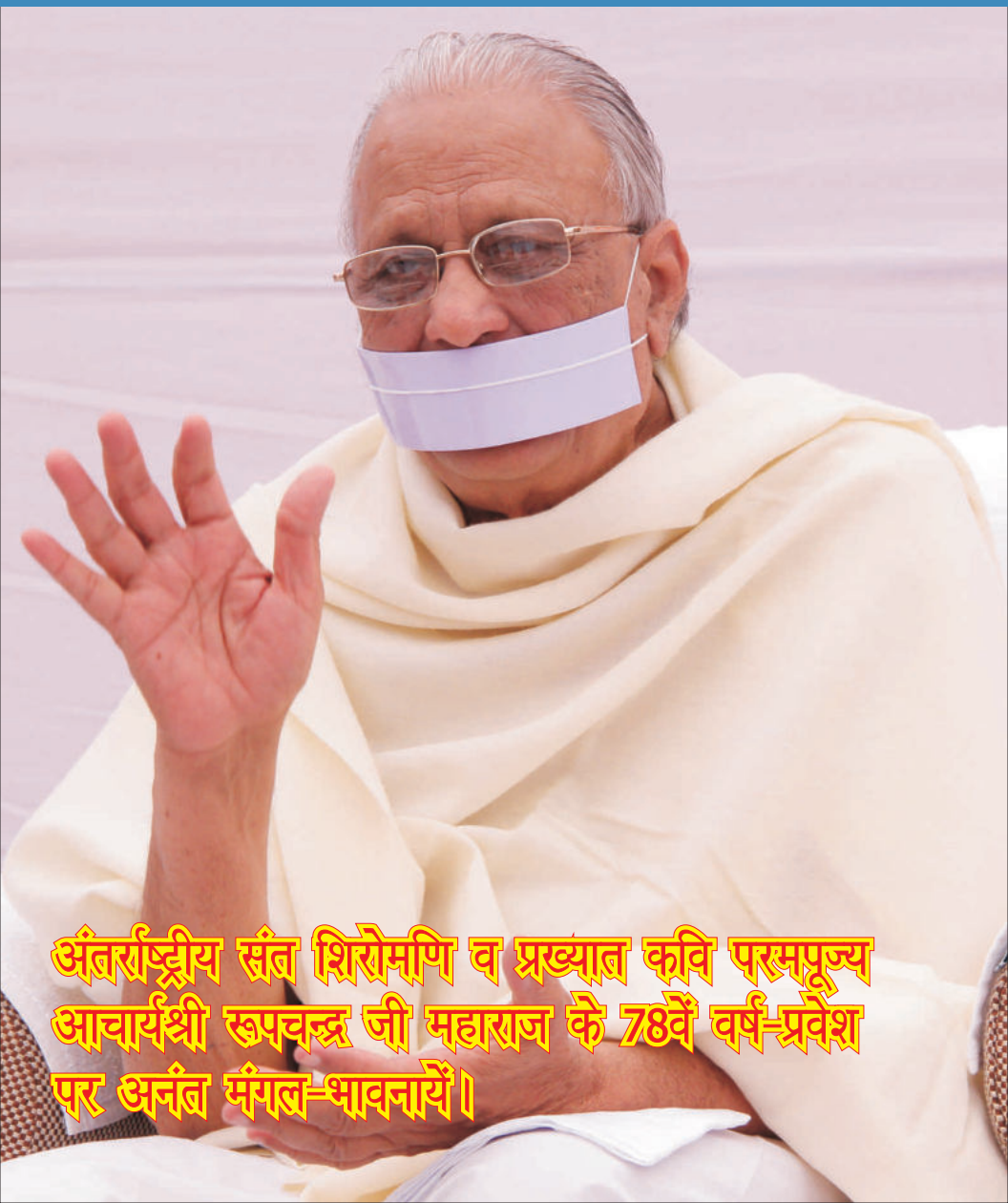

अंतर्राष्ट्रीय संत शिरोमणि व प्रख्यात कवि परमपूज्य आचार्यश्री रूपचन्द्र जी महाराज के 78वें वर्ष-प्रवेश पर अनंत मंगल-भावनायें।

रूपरेखा

सदाचार ~ सद्विचार ~ सत्संस्कार

मार्गदर्शन :
पूज्या प्रवर्तिनी साध्वी मंजुलाश्री जी

संयोजना :
साध्वी कनकलता
साध्वी वसुमती

परामर्शक :
श्रीमती मंजुबाई जैन

प्रबंध संपादक :
अरुण कुमार पाण्डेय

सम्पादक :
श्रीमती निर्मला पुगलिया

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये
आजीवन शुल्क : 3000 रुपये

प्रकाशक
अरूण तिवारी
मानव मंदिर मिशन ट्रस्ट (रजि.)
पोस्ट बॉक्स नं. : 3240
सराय काले खाँ बस टर्मिनल के सामने,
नई दिल्ली - 110013
फोन नं. : 26345550, 26821348
Website : www.rooprekha.com
E-mail : contact@manavmandir.info

इस अंक में

आस्था का अग्नि-स्नान
हमारे प्राचीन ऋषियों और मुनियों ने ब्रह्माण्ड की एकता का जो रहस्य अन्तर दृष्टि में पाया था, आज वही विज्ञान की पकड़ में आ रहा है। फूल-पत्तों की छाती में धड़कते हुए प्राणों को आज के जो वैज्ञानिक देख पाए हैं, वे इस कद्र देख पाए हैं कि एक जलती हुई दिया-सलाई किसी के हाथ में देकर जब एक पत्ते को जलाया गया, तो उन्होंने देखा कि पास के पत्त सहम से सिकुड़ गए। 05

कषाय-विजय
मुक्ति न श्वेताम्बर में है, न दिगम्बर में, न तर्कवाद में है, न तत्ववाद में और न ही किसी एक पक्ष की सेवा करने में है। वास्तव में क्रोध आदि कषायों से मुक्त होना ही मुक्ति है तथा राग-द्वेष से मुक्त होना ही निर्वाण है। क्रोध आदि कषायों को क्षय किए बिना केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। मुक्ति का एकमात्र साधन है- 'कषाय-विजय'। 16

ब्रह्मवादिनी गार्गी की कथा
"सूर्य किसमें प्रतिष्ठित है?"
"नेत्र में।"
"नेत्र किसमें प्रतिष्ठित है?"
"रूपों में, क्योंकि पुरुष नेत्रों से ही रूपों को देखता है।"
"रूप किसमें प्रतिष्ठित है?"
"हृदय में, क्योंकि पुरुष हृदय से ही रूपों को जानता है।" 20

दिल व दिमाग को करे ठंड़ा, तिल के तेल की मालिश
तिल के तेल में तांबा, मैगनीज, कैल्शियम, जिंक और मैग्नीशियम बहुत अधिक मात्रा में होते हैं। यह हड्डियों के खनिज घनत्व और स्वास्थ्य को बढ़ाता है। नियमित मालिश गठिया के दर्द से राहत प्रदान कर सकती है। 24

संत-वाणी

आँख देखना, कानां सुणना, मुख से कछु न कहना,
गोरख कहे सुनो रे अवधू, जग में ऐसे रहना।

-योगी गोरखनाथ

बोध-कथा

ऐसे बना पंढरपुर

संत पुंडलीक माता-पिता के परम भक्त थे। भीमा नदी के किनारे रहते और माता-पिता की सेवा में सदा लगे रहते। उनकी एकनिष्ठ मातृ-पितृभक्ति, अविचल श्रद्धा और तन्मयतापूर्ण सेवा ने भगवान कृष्ण को मुग्ध कर दिया ओर उन्होंने अपने इस परम भक्त को दर्शन देना चाहा। एक दिन पुंडलीक अपने माता-पिता के पैर दबा रहे थे कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ वहां प्रकट हो गए, लेकिन पुंडलीक पैर दबाने में इतने लीन थे कि उनका अपने ईष्टदेव की ओर ध्यान ही नहीं गया। तब प्रभु ने ही स्नेह से पुकारा, 'पुंडलीक, हम तुम्हारा आतिथ्य ग्रहण करने आए हैं।' पुंडलीक ने जब उस तरफ दृष्टि फेरी, तो रुक्मिणी समेत सुदर्शन चक्रधारी को मुस्कुराता पाया। उन्होंने पास ही पड़ी ईंटें फेंककर कहा, 'भगवान! कृपया, इन पर खड़े रहकर प्रतीक्षा कीजिए। पिताजी शयन कर रहे हैं, उनकी निद्रा में मैं व्यवधान नहीं लाना चाहता। बस कुछ ही देर में मैं आपके पास आ रहा हूं। और वे पुनः पैर दबाने में लीन हो गए। पुंडलीक की सेवा ओर शुद्ध भाव देख भगवान् इतने प्रसन्न हुए कि कमर पर दोनों हाथ धरे, पांवों को जोड़ वे ईंट पर खड़े हो गए। किंतु माता-पिता को निद्रा आ ही नहीं रही थी। सो पुंडलीक ने भगवान से वैसे ही खड़े रहने का आग्रह किया और वे देर तक माता-पिता के पैर दबाने में ही लगे रहे। उधर भगवान ने सोचा कि जब पुंडलीक ने इतने प्रेम से उनके लिए इस प्रकार की व्यवस्था की है तो इस स्थान को क्यों त्यागा जाए! उन्होंने वहां से न हटने का निश्चय किया। पुंडलीक माता-पिता के साथ उसी दिन भगवद्धाम चले गये, किंतु श्रीविग्रह के रूप में 'वीट' पर खड़े होने के कारण भगवान् 'विट्ठल' कहलाए और जिस स्थान पर उन्होंने अपने प्रिय भक्त को दर्शन दिए थे, वह 'पुंडलीकपुर' कहलाया जिसका वर्तमान प्रचलित नाम पंढरपुर है।

खुद को बदलना सीखो

यह एक सुनिश्चित मत है, हम बदलें, सब कुछ अपने आप बदल जाएगा। क्योंकि हमारे अपने बदलते ही हर चीज का संदर्भ बदल जाएगा। संदर्भ बदलते ही अर्थ बदल जाएगा। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दो शिष्यों में विवाद हो गया। एक कहता- तुमसे बड़ा में हूं। दूसरा कहता, तुमसे बड़ा में हूं। एक संन्यास-दीक्षा में ज्येष्ठ था तथा दूसरा ज्ञान में। विवाद का हल पाने के लिए दोनों स्वामीजी के पास पहुंचे। अपने-अपने तर्क रखे और स्वामीजी से निर्णय देने के लिए निवेदन किया। स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा- जो दूसरे को बड़ा माने, वह बड़ा। हम थोड़ा-सा ध्यान देंगे, स्वामीजी ने क्या कहा? स्वामीजी ने कहा- जो दूसरे को बड़ा माने, वह है बड़ा। अब तुम ही सोच लो, तुम्हारे में कौन बड़ा है। स्वामीजी का निर्णय दोनों ने सुना। अब दोनों एक-दूसरे को बड़ा कहने लगे। जो दीक्षा में, संन्यास में ज्येष्ठ था, वह कहने लगा- माथा मुंड़ाने से क्या होता है। महत्त्वपूर्ण है ज्ञान। आपने मेरे से शास्त्र ज्यादा पढ़े हैं। आप शास्त्रज्ञ हैं। आप प्रभावशाली प्रवचनकार हैं। आप हैं मेरे से बड़े। दूसरा बोला- शास्त्र पाठ से क्या होता है। एक साधनाहीन व्यक्ति भी बड़े-से-बड़ा विद्वान हो सकता है, प्रखर वक्ता हो सकता है। पर उससे क्या? महत्व साधना का है। आप साधना में मेरे से ज्येष्ठ हैं, इसलिए आप बड़े हैं। इतनी देर दोनों "में बड़ा हूं" के लिए झगड़ रहे थे अब दोनों "आप बड़े हैं" के लिए झगड़ने लगे। किन्तु दोनों झगड़ों में, दोनों विवादों में बड़ा अन्तर है। पहले विवाद में कटुता थी, दूसरे में मधुरता है। पहले में आग्रह था, अहम् था, दूसरे में विनम्रता है, मनुहार है।

यह कटुता मधुरता में कैसे बदली? दोनों वे के वे हैं। फिर "मैं बड़ा" से "आप-बड़े" कैसे हो गये? दृष्टि बदली, घटनाओं का संदर्भ बदल गया। संदर्भ बदला कि अर्थ बदल गया। अर्थ बदला कि पूरा वातावरण बदल गया। पूरा जीवन बदल गया। जीवन बदला कि पूरा जगत बदल गया। कहा भी है-

औरों को बदलने के लिये
खुद को बदलना सीखो,
शंकर बनना है अगर
विष-घूंट निगलना सीखो,
उजाले की परिभाषा न
मिलेगी किताबों में तुम्हें,
उसे पाने के लिए खुद
दीपक बन जलना सीखो।

प्रस्तुति : निर्मला पुगलिया

आत्मनेपदम्

❍ आचार्य रूपचन्द्र

डॉ. विनीता जी ने जब मेरी जीवन-यात्रा पर अपनी कलम के लिए अनुमति चाही, मैंने अपने को अजीब-सी दुविधापूर्ण मनःस्थिति में पाया। मेरी यात्रा अभी जारी है। वह भी अनंत की यात्रा। अभी जितना चला हूँ, क्षितिज पर क्षितिज खुलते जा रहे हैं। इतना अवश्य जान पाया हूँ कोई भी क्षितिज कहीं मिलने वाला नहीं है। यह अंत-हीन सिलसिला है। अब रही अब तक की यात्रा की उपलब्धि-कथा, तो यही कह सकता हूँ मैं किसी पिंजरे में बंधा नहीं। इसलिए असीम आकाश का सुख ही मेरी उपलब्धि है।

यात्रा के बीच पिंजरे खूब मिले। एक-से-एक लुभावने पिंजरे। सोने-चांदी के पिंजरे। रत्न-जडित कटोरों में स्वादिष्ट मिष्ठान्न-मेवे। पिंजरे का आमंत्रण स्वीकार करने पर सर्वोच्च पद, यश-प्रतिष्ठा और जय-जय के नारे। सब कुछ था सामने। लेकिन इसके लिए पिंजरे का जीवन स्वीकारना जरुरी था। असीम आकाश के सुख से मुँह मोडना जरुरी था। तभी भीतर से कोई चीख उठता-

रास आ गया जिस तोते को सोने के पिंजरे का जीवन,
उन पांखों के लिए कहीं कोई आकाश नहीं होता है।

और मैं पांखें फडफडाकर फिर खुले आकाश में उड़ान भरने लगता।

कुछ ऐसे भी पिंजरे मिले, जिनमें से अनंत आकाश की झलक साफ-साफ मिलती थी। मैंने उनकी ओर कदम बढ़ाने का जब-जब मन बनाया, भीतर से आवाज आई-

यहाँ वे पांखें तोड़ दी जाती हैं
जो उड़ने की कोशिश किया करती हैं
और वे आंखें फोड़ दी जाती हैं
जो इस पिंजरे की परिधि को लांघकर
देखने की कोशिश किया करती हैं।

असीम आकाश की उड़ान का सुख ही मेरी जीवन-यात्रा का प्रयोजन रहा है। वही

मेरी उपलब्धि है। छायादार पेड़ों की टहनियों पर लटके पिंजरों के आसपास जब विश्राम के लिए कुछ क्षण ठहरा, लोगों ने मेरी ओर आशा भरी नजरों से देखा। तभी मेरी आंखों के सामने पिंजरे में बैठे, विवश आंखों से आकाश को निहारते पंछी का चेहरा सामने आता, और मैं अनंत आकाश में पंख फैलाकर उड़ पड़ता। लोग सहानुभूति के स्वरों में बतियाते- इसके नसीब में पिंजरे का सुख है ही कहाँ। उनकी सोच बिल्कुल सही है। पिंजरे का सुख मेरे भाग्य में नहीं है। असीम आकाश का सुख जो है। जीवन की इसी उपलब्धि को विनीता जी ने अपने शब्दों में बांधा है।

अब तो यह शरीर भी पिंजरा लग रहा है। इससे भी मुक्त होने पर उस असीम नीले आकाश में उन्मुक्त उड़ान भरेगा- हंस अकेला।

-मत पूछो तुम कि नभ निस्सीम का फिर माप क्या होगा,
कि जब हम छोड़ देते पुण्य भला फिर पाप क्या होगा।

असीम आकाश का असीम सुख सबको मिले, इसी शुभाशंसा के साथ-

(डॉ. विनीता गुप्ता द्वारा उपन्यास-शैली में पूज्यवर की जीवन-गाथा की भूमिका से उद्धृत)

आस्था का अग्नि-स्नान

अमृता प्रीतम

दुनिया के मिथहास में एक परिकल्पना की जाती है, कि एक शक्ति है, जिसे काल-मुक्त होने के लिए कई बार अग्नि-स्नान करना होता है। उसका कहीं कोई नाम नहीं दिया गया, लेकिन कह सकती हूं कि उसका नाम आस्था है...

'आस्था' शब्द को बहुत आसानी से होंठों पर लाया जाता है, लेकिन इसकी शक्ति जाग्रत न हो, तो इसका कोई अर्थ नहीं होता। और मैं समझती हूं कि उसकी शक्ति को जाग्रत करने के लिए उसके अक्षरों को एक अग्नि-स्नान करना होता है...

जिज्ञासा, संकल्प, संवेदना, तर्क, चिन्तन, चेतना और साधना की सात अग्नि-नदियां हैं, जिनमें आस्था को उतरना होता है, और इस अग्नि-स्नान से काल-मुक्त होना होता है...

मुनि रूपचन्द्रजी की आस्था, जिस तरह आहिस्ता-आहिस्ता अपने अक्षरों से अहिंसा के रहस्य को खोलती है, हर रज-कण में उतरती है, हर जल-कण में

भीगती है, प्रलय और विनाश के अन्तर को दिखाती हैं, और हिंसा की उस नींव की ओर संकेत करती है, जिस नींव पर हमारी संस्कृति का निर्माण हुआ है, तो कह सकती हूं कि मुनि जी की आस्था ने सचमुच वह अग्नि-स्नान किया है, जिससे वह भय-मुक्त, सीमा-मुक्त और काल-मुक्त हो पाई है...

हमारे प्राचीन ऋषियों और मुनियों ने ब्रह्माण्ड की एकता का जो रहस्य अन्तर दृष्टि में पाया था, आज वही विज्ञान की पकड़ में आ रहा है। फूल-पत्तों की छाती में धड़कते हुए प्राणों को आज के जो वैज्ञानिक देख पाए हैं, वे इस कद्र देख पाए हैं कि एक जलती हुई दिया-सलाई किसी के हाथ में देकर जब एक पत्ते को जलाया गया, तो उन्होंने देखा कि पास के पत्त सहम से सिकुड़ गए। और उन्होंने तजुर्बा किया कि जिस किसी ने जलाया था, कई दिनों के बाद, जब उसे फिर पत्तों के पास लाया गया, तो पत्ते उसे पहचान गए थे, और उसके पास आते ही वे सिकुड़ गए थे...

एक साइंस-दां हुए हैं- लैथब्रिज, वे लिखते हैं- ''एक पहाड़ी थी, जिसकी शिखर पर, एक ओर का किनारा वहां आने वालों को अपनी ओर खींचता था।'' एक वार उनकी पत्नी वहां गई, और वह लिखते हैं, ''वह उसी ओर खिंचती चली गई, और जब वहां जाकर खड़ी हो गई, तो एक गहरी उदासीनता में घिरती गई। इतना कि उसे लगा कि उसके पांव उसके बस में नहीं थे। वह उस पहाड़ी के उस कोने में खड़ी नीचे की ओर गिरना चाह रही थी- एक अजीब स्याह-ताकत उसे अपनी ओर पकड़ रही थी- और कई दिनों की खोज के बाद उसे पता चला कि कुछ महीने हुए- किसी आदमी ने ठीक उसी स्थान पर खड़े होकर नीचे को छलांग लगा दी थी और आत्म-हत्या कर ली थी।''

बात नकारात्मक शक्ति की हो या सकारात्मक शक्ति की, या दोनों शक्तियां वायु-मण्डल में तरंगित हो जाती हैं। जिस स्थान पर कोई मानसिक यातना में तड़पना है, वह स्थान हजार बरसों के बाद भी पीड़ित रहता है, और एक स्याह-ताकत वहां बनी रहती है। और जिस गुफागार में कोई बरसों साधना करता है, उस गुफागार का कण-कण आत्मिक रोशनी से तरंगित हो जाता है।

यही लैथब्रिज थे जिन्होंने जमीन दोज शक्तियों का पता पाने के लिए जो पेंडुलम तैयार किया, उससे पाया कि सिर्फ सोना, चांदी जैसी धातुओं का पता ही नहीं पाया जा सकता, बल्कि इन्सान की अहसास का भी पता पाया जा सकता है। और जब उन्होंने एक पत्थर का मुआयना किया जो दो हजार साल पहले किसी जंग में इस्तेमाल हुआ था, तो देखा कि उस पर मौत की रेखाएं अंकित हो चुकी थी, और जो दो हजार साल के बाद भी इन्सान के क्रोध

और नफरत का पता देती थीं, और उन्होंने देखा कि मौत का पता पाने के लिए उन्होंने जो दर नियत किए थे, ठीक वही दर इन्सान के क्रोध और अत्याचार का पता देते थे। यानि क्रोध, नफरत, अत्याचार और मौत का एक ही दर है।

मुनि रूपचन्द्र जी जब अपने अनुभव को अक्षरों में उतारते हैं कि कोई भी युद्ध इन्सान की जीवन-शैली नहीं हो सकता, तो इसी विज्ञान में उतरते हैं, जहां खेतों की जो हरियाली किसी फौज के बूटों तले रौंद दी जाती है, वहां एक पीड़ा धरती की परतों में उतर जाती है, और फिर उसी धरती पर, हिंसा की नींव पर जो संस्कृति निर्मित होती है, वह फिर किसी नए युद्ध को जन्म देती है।

उनका संकेत बहुत गहरे में उतरता है, ''हिंसा भी अपनी और अहिंसा भी अपनी''- प्रश्न तो चुनाव का है, और यह कि हम अपने ही हाथों विनाश को निमन्त्रण दे रहे हैं।

पत्थर, पत्थर है, वह किसी युद्ध के दौरान क्रोध से भरे हुए हाथों में आ जाए, तो उस पर मौत की रेखाएं अंकित हो जाती हैं, और कोई अन्तर्मन से उसके कण-कण को सुन ले, तो वह गोर-हिरा हो जाता है, जिससे कुरान की आयतें सुनाई देती हैं।

इस पुस्तक का अक्षर-अक्षर मुनि रूपचन्द्र जी की अन्तर्वेदना से निकला है, इसलिए मैं मानती हूं कि पढ़ने वाले की रग-रग में तरंगित हो जाएगा।

अहिंसा में उनकी आस्था, जैन परम्परा से जरूर आई होगी, पर जो ज्ञान अर्जित किया जाता है, वह तब तक अपना नहीं होता जब तक वह अपने अनुभव में नहीं उतरता। और अहसास होता है कि उनकी आस्था सिर्फ संस्थाई और संस्कारित आस्था नहीं है, उनकी आस्था में गहरी जिज्ञासा, संकल्प, संवेदना, तर्क, चिन्तन, चेतना और कठिन-साधना का अग्नि-स्नान किया है...।

(पूज्यवर की पुस्तक- अहिंसा है जीवन का सौन्दर्य- की भूमिका से उद्धृत)

भूमा में सुख है अल्प में नहीं

❍ *कल्याणमल लोढा*

मुनि रूपचंद्र तेरापंथ धर्म संघ के प्रसिद्ध मुनि और चिंतक हैं जिन्होंने जीवन की समस्त स्पृहाओं का त्याग कर साधना ओर तपश्चर्या का मार्ग अपनाते हुए उन भूमिकाओं की उपलब्धि की है जो एक दार्शनिक, कवि और योगी की सहज साधना कही जा सकती है। तरुण होते हुए भी उनको अनुभूतियां जितनी प्रौढ़ हैं उतनी ही परिपक्व और अपनी प्रवहमानता में विकासोन्मुख। प्रत्येक साधक जीवन की

अन्तर्बाह्य उर्जा का सम्यक संयोजन कर साधना राज्य में प्रवेश करता है और विकल्प से परे, संकल्प व वितर्क से परे सहज और प्रत्यय ज्ञान की पृष्ठभूमि में उस स्थिति पर पहुंच जाता है जहां उसका रागबोध अपनी अर्थवत्ता में समष्टि चेतना ग्रहण करता हुआ व्यक्तित्व की पूर्ण इयत्ता और अस्मिता का प्रमाण बनता हैं। यही मधुमती भूमिका है और है राग और बुद्धि का पूर्ण समन्वय ओर एकीकृत रूप। भारतीय चिंताधारा में ऋषि और मुनि को इसीलिए कवि की संज्ञा से अभिहित किया गया है। ऋग्वेद की ऋचाएं इसका प्रमाण हैं। भारतीय मान्यता के अनुसार अनृषि कवि नहीं होता, कारण वह भी एक स्रष्टा और नियामक है। प्रजापति की पंचभूतात्मक सृष्टि से भिन्न उसकी भाव चेतना अपने सृजन में जिस विराट तत्त्व को रूपायित करती है वह देश, व्यक्ति और काल की विविधता और द्वैतता से परे समग्र मानवीय चेतना को आकलित करते हुए जीवन के विकास की उच्चतर भूमिका उद्घाटित करती है। इसी से दर्शन, साधना और चिंतन की अंतिम स्थिति काव्य है। दर्शन और काव्य का यह समन्वित रूप व्यक्तित्व की पूर्णता का कारण बनता है। मुनि रूपचंद्र भी ऐसे ही कवि हैं। मैंने उनकी कविताएं सुनी और पढ़ी हैं। इस कविताओं की प्रकृति पर परिपुष्ट संवेदनाएं कवि की रचना-प्रक्रिया को व्यापकता देती हुई उसे 'धरती की गंध' से 'सुवासित' रखती है। कविकर्म केवल वैयक्तिक भावादेश या भावाभिव्यक्ति नहीं होता। उसकी रचनाशीलता मानवीय धर्म और जीवन प्रक्रिया की संश्लिष्टता प्रस्तुत करती है और इसी में उसकी सनातनता विद्यमान है। मुनि रूपचन्द्र के कवि की अनुभूति न तो आरोपित है और न अभिव्यक्ति खंडित। उसकी संप्रेषणीयता अनुभूति और अभिव्यक्ति की अभिन्नता पर आधृत होकर आत्मोपकथन का ही मुखरित या वैखरी रूप है। उनकी कविता इसीलिए शब्द से अधिक अर्थ का उपक्रम है- ऐसा उपक्रम जिसमें शब्द और अर्थ का सहित तत्त्व वाग्वैदग्ध्य में एक ओर विशिष्ट तो है दूसरी ओर अपने भावबोध में अत्यन्त जीवंत और सार्थक।

प्रस्तुत पुस्तक 'भूमा' उनकी कविताओं का प्रतिनिधि संकलन है, जिसकी अनेक कविताएं 'अंधा चांद', 'कला अकला', 'अर्द्ध-विराम और 'भीड़ भरी आंखें' में प्रकाशित हो चुकी हैं। भूमा बहुत्त्व का सूचक है, विराट तत्त्व का। भूमा तत्त्व भारतीय दर्शन का निचोड़ है। भूमा का अभाव दुःख का कारण है क्योंकि अल्पता ही दुःख है (नाल्पे सुखमस्तु)। अवकाशात्मक आकाश स्व-स्वरूप से 'शून्य' है तब भी 'पूर्ण' है। किसी बिंदु पर पहुंच की स्वरूप-हीनता ही 'पूर्णता' बन जाती है। इसी से कहा गया है- 'यत्शून्यं

तत्संपूर्णम्'। सम्पूर्ण विसर्जन ही अन्यतम और अनंत अर्जन का कारण बनता है। यही योग-साधना का रहस्य है। शब्द, अर्थ ओर ज्ञान की पृथक् प्रतीति वितर्क है, जिसका अतिक्रमण कर योगी पूर्व-उल्लिखित मधुमती भूमिका में पहुंच जाता है। कवि की रचना-प्रक्रिया भी इसीके समानान्तर चलती है। वह वितर्क की, शब्द, अर्थ और ज्ञान की पृथक् प्रतीति से परे सर्वत्र शुद्ध, समग्र और सह अस्तित्व का बोध प्राप्त करता है। इसे हम व्यष्टि चेतना की समष्टि चेतना में परिणति कह सकते हैं। यह समष्टि चेतना हैं। यह समष्टि चेतना ही उसका प्रयोजन है। अस्तित्व सत् का रूप है और बोध उसकी चित्तवृत्ति का। सत् और चित् का यह समन्वित तत्त्व ही रसात्मक आनन्द है जिसमें द्वैत का अभाव रहता है। यही भूमा तत्त्व है, परम सुख (नाल्प वय सुखमस्ति भूमैव सुखम्)। इसी को 'विराट पुरुष' भी कहा गया है। छांदोग्योपनिषद में इसी भूमा सुख की उपलब्धि के लिए सनत्कुमार नारद को प्रेरित करते हैं और इसी की व्याख्या शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र में की है। भूमा निषेधमूलक एवं अभावग्रस्त अपूर्णता का द्योतक नहीं है। वह सार्थक सम्पूर्णता का प्रमाण है। यहां नास्ति अस्ति में परिणत हो जाती है, और सत्ता का केंद्र-बिंदु वृहत्तम और अनंत वृत्त शक्ति-संयुक्त बन जाता है। मुनि रूपचन्द्र का कवि अपनी सृजनात्मक प्रक्रिया में ऐसा ही केंद्र-बिंदु बनना चाहता है। समस्त बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा जीवन की पूर्णता की आकांक्षा है। इसी से वे कहते हैं-

मैं हर बार अपने को नकारता रहा हूं,
लोग सोचते हैं
मैं कैद होता जा रहा हूं,
मुझे लगता है
मैं मुक्त होता जा रहा हूं!

अपने को नकारना अस्तित्व-हीनता का प्रमाण नहीं होता। वह अन्तर्भूत आत्म-स्वीकृति का कारण बनता है। अहं और इदं का ऐक्य सोहं की प्रस्तुति है। भूमा में संकलित अनेक कविताएं इस प्रस्तुति को स्पष्ट करती हैं-

लेकिन तुमने जब कहा-
लहरों और रंगों में ही तुम खोए हो
जल और आकाश को तुम क्या जानो,
रूप को ही देखने वाले,
अरूप को क्या पहचानो,
तब से मेरी सत्ता डगमगा गई है!

भूमा का कवि जाग्रत जिजीविषा का कवि है, पर उसकी जिजीविषा भौतिक एषणाओं से समावृत न होकर जिस सम्पकत्व की ओर अभिप्रेरित और प्राणवान शक्ति से अनुप्राणित है। वह है आत्मोपलब्धि की खोज। यही उसके रहस्य चिंतन की मूल प्रक्रिया है। कवि इसी चिंतन प्रक्रिया के मध्य अपनी अनुभूतियां बटोर कर संजोता है और उन्हें प्रकृत भावभूमि

पर प्रतिष्ठित कर सशक्त और सार्थक दृष्टि से मानवीय उत्कर्ष तक ले जाने की चेष्टा करता है। यही कारण है कि परंपरागत साधनात्मक या भावात्मक रहस्यवाद से या मध्ययुगीन ईसाई करुणामूलक संचेतनशील प्रकृत रहस्यात्मक चिंतन से भिन्न मुनि रूपचन्द्र मानवतावादी रहस्यानुभूति के उद्‌घाटक और उद्योक्ता हैं। उनकी आस्था न तो विकृत है और न पराभूत। कवि अपने गीतों से प्यार ही नहीं करता वरन् उन्हें अपना 'संसार' समझता है तथा धरती की हर गूंज को अपनी आवाज गिनता है, जिसे कहीं से भी सुना और देखा जा सकता है। वह जानता है कि छिपकली पतंगों को निगल सकती है पर प्रकाश को नहीं और उसका विश्वास है कि पतंग से अधिक प्रकाश की दीप्ति महत्वपूर्ण है। मुनिश्री ने अपनी अनेक कविताओं में रागात्मक और संवेदनात्मक सांसें भर दी हैं जिनसे खोखले बांस और सपनों में भी निरंतर रस-सृष्टि होती रहे। यह रस-सृष्टि ही आनंद का वह अक्षय स्रोत है जो सत् और चित की समन्वित शक्ति से जीवन की सिद्धशिला बनता है। मुनि रूपचन्द्र मिथ्या और आरोपित भावनाओं के कवि नहीं हैं और न उसके ऊहापोह में उनकी रागात्मक चेतना कुंठित और संकुचित हुई है। प्रकृति के विराट और व्यापक स्वरूप का विविध रूपेण अवलोकन कर उनका संचेतनशील कर्तत्व अपनी क्रियमाणता खोजता है और आत्मानुभूति की गहराई में उतर कर वह रूप और अरूप की अव्यवहित अनावृत पर स्वच्छंद और निर्बन्ध गतिशीलता देखता है जहां-

'हाथ से हाथ छू जाए
सांस सांस से टकरा जाए
फिर भी एक-दूसरे को छू नहीं पाएं
मन ही मन अवश्य कुछ गुनगुनाएं
पर इतने सजग कि
अधर कहीं खुल नहीं जाएं।'

'अर्द्ध-विराम की 'निराकार कल्पना' 'असहयोग' और 'अंधा चांद' की 'झरोखे में बैठा उदास कबूतर' कवि के नये और यथार्थ भाव-बोध को स्पष्ट करते हैं। इन कविताओं में उसका अन्तर्मन इतिहास में डूबे मिथकों और रूपकों को खोजता हुआ जीवन की अर्थवत्ता का संधान करता है।

विविध रंगों से रंजित, विभिन्न रूपों से मंडित और विशिष्ट तूलिकाओं से अंकित 'भूमा' का कवि व्यापक अनुभूति और सार्थक अभिव्यक्ति का कवि है, जिसका रचनात्मक धरातल और कर्तृत्व एक ओर मानवीय ऊर्जा का धनी हे तो दूसरी ओर सक्षम भावनाओं का। सम्यकत्व की ओर बढ़ता हुआ इस मुनि कवि का काव्य अपनी अर्थवत्ता को अभीप्सित परिणति दे-

यही मेरी मंगल कामना है।
यस्य सर्व आत्मैवअभूत तत्र को मोहः
कः शोकः एकत्वं अनुपश्यतः
भूमा एव सुखम्।

(पूज्यवर का कविता-संग्रह भूमा (1976) के आमुख से उद्‌धृत)

कषाय-विजय

❍ संघ प्रवर्तिनी साध्वी मंजुलाश्री

'कषाय' जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। आज की भाषा में इसे प्रकम्पन, आवेग, उत्तप्ति और आवर्त कह सकते हैं। निश्चय नय की दृष्टि से चैतन्य के शांत सागर में विक्षोभ उत्पन्न होना कषाय है। रागद्वेषात्मकोत्तापः कषायः-कषाय का अर्थ है रागद्वेषात्मक उत्ताप या आत्मा का उत्सर्ग।

कषाय चार प्रकार का होता है- क्रोध, मान, माया, लोभ। इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं-

अनन्तानुबन्धी-क्रोध, मान, माया, लोभ।
अप्रत्याख्यान- क्रोध, मान, माया, लोभ।
प्रत्याख्यान- क्रोध, मान, माया, लोभ।
संज्वलन- क्रोध, मान, माया, लोभ।

ये अनन्तानुबन्धी आदि चारों क्रमशः सम्यक्त्व, देश-विरति, सर्व विरति और यथाख्यात चरित्र के बाधक होते हैं। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं-

1. चार प्रकार का क्रोध क्रमशः पत्थर, भूमि, बालू और जल की रेखा के समान होता है।
2. चार प्रकार का अभिमान क्रमशः पत्थर, अस्थि, काष्ठ और लताकुंज के समान होता है।
3. चार प्रकार की माया क्रमशः बांस की जड़, मेंढे का सींग, चलते हुए बैल के मूत्र की धार और छिलते हुए बांस की छाल के समान होती है।
4. चार प्रकार का लोभ क्रमशः कृमि के रंग, कीचड़, गाड़ी के खंजन और हल्दी के रंग के समान होता है।

इन क्रोध, मान, माया, लोभ को कषाय कहा जाता है। अपना हित चाहने वाला व्यक्ति इन चारों कषायों का त्याग करे, क्योकि क्रोध से आत्मा नीचे गिरती है, मान से अधोगति मिलती है, माया से सद्गति का नाश होता है और लोभ से इहलोक, परलोक दोनों में भय प्राप्त होता है। भगवान महावीर ने कहा है-

कोहो पीइं पणासेई, माणो विणय नासणो।

माया मित्ताणि नासेई लोहो, सव्व विणासणो।।

क्रोध प्रीति का, मान विनय का, माया मित्रता का और लोभ सब गुणों का विनाश कर देता है। क्रोध आदि चारों कषाय जन्म, मरण, रूप, वृक्ष के मूल को सींचने वाले है। संसार का मूल कर्म है और कर्म का मूल कषाय है। कषाय जाज्वल्यमान अग्नि के समान है। इन कषायों को जीतने से वीतराग भाव प्राप्त होता है। दशवैकालिक में कहा-चउक्कसाया वगए स पुज्जो' -जो चार कषायों से रहित है, वही पूज्य है।

मानव का आत्म-स्वभाव कषायादि प्रवृत्तियों से घूमिल है। उसमें अंह, तृष्णा जैसे दुर्गण घर कर गए हैं। इसलिए विश्व में आत्मघात, अविश्वास, कुंठा जैसी जीवन-विघातिनी प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं। आन्तरिक सौन्दर्य घट रहा हैं, भौतिक आकर्षण बढ़ रहा है। व्यक्ति कषायों में लिप्त बनकर आत्म-स्वरूप को भूल रहा है और कषायों में झुलस रहा है।

कषाय अग्नय प्रोक्ता, श्रुतशील तपो जलम्
एतद् धारा हता यस्य स जनो नैवनश्यति।

-अर्थात् कषायों को अग्नि कहा गया है। श्रुतशील और तप को जल कहा गया है। जिसने इस जल धारा से कषायाग्नि को आहत कर डाला, वह अवश्य मुक्ति का राही है और वही शांति का स्त्रोत जीवन-दिशा का बोध है जो कषायों से परे हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती एक कॉलेज में भाषण करने गए। वहां एक विनोदी स्वभाव वाले विद्यार्थी ने प्रश्न किया-स्वामी जी आप विद्वान है या मूर्ख? स्वामी जी आश्चर्य भरे अपलक नेत्रों से उसे निहारते रहे, फिर कहा कि मैं संस्कृत भाषा में विद्वान हूं और अरबी भाषा में मूर्ख। स्वामीजी के इस नम्रता पूर्ण उत्तर को सुनकर विद्यार्थी बहुत प्रभावित हुआ। अपने मित्रों से कहने लगा कि महात्मा कितने समतावादी हैं। मेरे द्वारा दुर्व्यवहार करने पर भी क्रोध की एक रेखा नहीं उभरी। सचमुच ऐसे मानव ही शांति का वरण कर सकते हैं।

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं चज्जव भावेण, लोभं संतोषओ जिणे।।

कषाय विजय की प्रक्रिया है उपशम से क्रोध को, नम्रता से मान को, सरलता से माया को और संतोष से लोभ को जीतना। यह कषाय रूपी चौकड़ी सब अनर्थों की जड़ है। इसकी तुलना विष से की जा सकती है। क्रोध मन को चिंतन शून्य बना देता है। व्यक्ति का विवेक विलुप्त हो जाता है और उस अवस्था में व्यक्ति बुरे से बुरा और क्रूर से क्रूर व्यवहार कर बैठता है।

कभी-कभी तो अपनी या पर की हत्या भी कर डालता है। क्रोधी मनुष्य के हृदय में मैत्री, माधुर्य, धर्म, सहिष्णुता आदि सद्गुण नहीं रहते। क्रोध की स्थिति में मानव की दशा विचित्र हो जाती है। शरीर कांपने लगता है। हृदय की गति तेज हो जाती है और समग्र मांसपेशियों मे उष्मा पैदा हो जाती है, जो शरीर और आत्मा दोनों के लिए अहितकर है।

मान-इस अभिमान से मानव नीच गति को प्राप्त होता है। इससे विवेक-नेत्र नष्ट हो जाते हैं। जब तक अहं का वास रहेगा, तब तक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा।

एक भक्त ने संन्यासी से पूछा, ''मुझे तीस वर्ष हो गए साधना करते-करते, अभी तक ज्ञान नहीं हुआ।'' संन्यासी ने कहा, ''अहंकार छोड़कर चिरपरिचित लोगों के पास रोटी मांगो।'' उसने कहा, ''यह कैसे हो सकता है?'' संन्यासी ने कहा, ''अभिमान छोड़े बिना ज्ञान नहीं मिलता।

जहां अहं का वास है वहां विनय का नाश।
शीतलता रहती नहीं कभी आग के पास।।

मान को दूर भगाकर चिदानंद की प्राप्ति करो। इसके बिना तुम अपनी लक्षित मंजिल नहीं पा सकते।

बाहुबलि के अहं ने जब तक उनमें ग्रहणशीलता उत्पन्न नहीं होने दी वे किनारे पर आकर भी मंझधार में फंसे रहे और जब अहं ने विनम्रता की शरण ली, मंझधार स्वंय किनारा बन गया।

ग्रहणशीलता उन सब व्यक्तियों की अनिवार्य अपेक्षा है, जो अधूरेपन से असंतुष्ट हैं और सम्पन्नता के लिए तीव्र ईप्सावान् हैं। ग्रहणशीलता का अभाव मनुष्य की दो स्थितियों का सूचक है-या तो वह पूर्ण हो गया है (जो ग्रहण नहीं करता) या फिर वह आवृत दशा में है।

स्वच्छ दर्पण प्रतिबिम्ब ग्राहक होता है। जिस दर्पण में सामने पड़ी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता वह या तो दूसरी छवि से संभृत है या फिर मलिन।

सम्पूर्ण या संभृत को भरने की जरूरत नहीं। इसलिए वहां ग्रहणशीलता की अपेक्षा नहीं रहती। 'कुशले पुण णो बद्धे णो मुक्के'- जो बंधता ही नहीं, उसे मुक्त होने की क्या जरूरत है? पर जो रिक्त है, उसे प्रतिक्षण और तब तक ग्रहणशीलता रहने की आवश्कता है, जब तक वह पूर्ण नहीं हो जाता।

रिक्तता मात्र ग्रहणशील नहीं होता। एक कमरा सर्वथा खाली है, पर द्वार खिड़किया आदि बन्द है तो पवन का प्रवेश नहीं हो सकेगा, क्योंकि आवरण ग्रहणशीलता के बीच व्यवधान है।

ग्रहणशीलता आत्मोपलब्धि या आत्म-प्रकाशन की वैज्ञानिक प्रक्रिया है, पर वह विसर्जन के बिना फलित नहीं होती।

अहंकार आग्रह को जन्म देता है। आग्रह के मनोभाव तब पनपते हैं, जब व्यक्ति स्वयं के चिंतन, कार्य और उपलब्धि को अतिरिक्त महत्व देता है।

आग्रह संघर्ष को समुत्पन्न करता है। एक व्यक्ति का अतिरिक्त भाव दूसरे व्यक्ति में ईर्ष्या अथवा हीनभाव उत्पन्न करता है। फिर परस्पर-विरोधी दो भावनाओं के बीच संघर्ष की चिनगारियां फूटती हैं। संघर्ष का परिणाम या तो परस्पर-विरोधी दो स्थितियां रूपांतरित होकर तीसरी स्थिति उत्पन्न कर देती है- जैसे पूंजीपतियों और श्रमिकों के संघर्ष ने कई स्थानों पर साम्यवाद की स्थिति पैदा कर दी, अथवा दुर्बल पक्ष सबल पक्ष के अधीन हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अविभक्त मानव जाति उच्च वर्ग और निम्न वर्ग इन दो भागों में बंट जाती है। यह वर्ग-विभाजन जो डाह, क्रूरता और असमत्व की देन है, मानव जाति का घोर अपमान और मानवीय एकता का अवांछनीय विघटन है।

देश, भाषा, रंग, लिंग और सम्प्रदाय के भेदों ने जो 'वाद' का रूप लिया और भाई-भाई के मन में जो जहर घोला, वह इन्हीं तत्वों की देन है।

उत्कर्ष और अपकर्ष के प्राबल्य ने जहां अहंभाव और हीनभाव का रूप नहीं लिया वहां शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आर्थिक विकास का तारतम्य होने पर भी मनुष्यों को इनके आधार पर विघटित नहीं किया गया।

तारतम्य कहां नहीं है? वह प्रकृति की देन है। समानता की भांति विलक्षणता भी मनुष्य का अपना धर्म है। हर चेतना के अपने विकास स्तर भी भिन्न भिन्न हैं। किसी भी वस्तु की सदृशता, विदृशता जितनी खतरनाक नहीं, उतनी उसको लेकर इतराने और मुरझाने की स्थिति खतरनाक है। अतिरिक्तता को अतिरिक्तता मानना अहं नहीं, सच्चाई है।

तीर्थंकरत्व महावीर का सामान्य मनुष्य से अतिरिक्त धर्म था, पर उसका प्ररूपण भगवान् का अंह नहीं, यथार्थ का प्रकाशन था। महावीर या तीर्थंकरत्व अगर अतीर्थंकर मनुष्य पर हावी होता तो वह उनका अंह होता पर महावीर के मन पर कभी अपनी महत्ता पर अहं और दूसरों की लघुता पर धृणाभाव नहीं पनपे क्योंकि उनकी आत्मा में समत्व का विकास हो चुका था, निर्विशेष स्नेह की धाराएं प्रवाहित हो गई थी। समता और स्नेह से सजल मानस कभी किसी को हीन समझकर उसकी अवहेलना नहीं कर सकता। उसका ऊर्ध्वमुखी दृष्टिकोण कभी किसी की दुर्बलता में नहीं उलझता, वह सदा आत्मतुला की अनुभूति करता हुआ, आत्मा को आत्मा की आंखों से देखता है। तभी तो

भगवान महावीर ने उस उत्कर्ष की स्थिति में समता का दर्शन दिया, हरेक को भगवान् बनने तक का अधिकार दिया और विषमता का उन्मूलन करते हुए कहा- 'नो हीणे नो अइरित्ते', अर्थात् इन औपाधिक तरतमताओं को लेकर किसी को हीन या अतिरिक्त मत समझो। ये काल्पनिक मूल्य परिवर्तनशील हैं। आज जो मिल-मालिक है, कल वह मजदूर हो सकता है। आज जो सामान्य व्यक्ति है, कल वह राष्ट्रपति बन सकता है। शाश्वत धर्म चैतन्य से हर प्राणी समृद्ध है।

यही समता भाव ही हमारी आत्मोन्मुखी वृत्ति है। अहं-विसर्जन का असाधारण उपाय समता ही है। जिस व्यक्ति के हृदय में समता भाव एक-रस हो जाता है उसका अंह विनम्रता में विलीन हो जाता है।

अहं व्यक्ति के बौद्धिक विकास का परिणाम है। इससे भौतिक शक्तियां बढ़ती हैं और उन शक्तियों से अभिमान। यह कल्पित अतिरिक्तता स्वबोध पर आवरण है, इसलिए मिथ्या ही है।

मिथ्या उत्कर्ष से सन्तुष्ट व्यक्ति में ग्रहणशीलता नहीं होती। ग्रहण और विसर्जन-शून्य जीवन रूढ़ होता है। रूढ़ जीवन विकास के सर्वथा अयोग्य होता है।

मृदुता जीवन को ग्रहणशील, अनाग्रही और संघर्ष-विहीन बनाती है, इसलिए वह काम्य है।

मृदु तत्व अहं का प्रतिपक्षी है तो हीनभाव का भी समर्थक नहीं है, वह अहं भाव और हीन भाव को एक ही विष-वृक्ष की दो शाखाएं मानता है, जो एक झुककर जमीन में गढ़ गई और दूसरी अकड़कर आकाश मे चढ़ गई। संतुलन दोनों में ही नहीं है।

अहं भाव उत्तेजनात्मक आवेग है तो हीन भाव निराशात्मक आवेग। अंह तनाव को उत्पन्न करता है तो हीन शैथिल्य को। तनाव से मन भारी होता है तो शैथिल्य, निरूत्साहित और निष्क्रिय कर देता है। अहं के इस उभय-पक्षी रूप का निरसन विनम्रता की पक्की भूमिका पर ही हो सकता है।

विनम्रता- अर्थात् अहंभाव और हीनभाव का संतुलित रूप।

विनम्रता- अर्थात् जीवन-विकास की उर्वर भूमिका।

विनम्रता- अर्थात् जीवन की वह लचक जो टूटते-टूटते बचाती है।

माया- दुर्भाग्य को जन्म देने वाली है और दुर्गति का कारण है। सिन्दूर प्रकरण तें कहा है कि-

व्यसनशत सहायां दूरतो मुंञ्च मायां'

सैकड़ों दुःख देने वाली माया को दूर से ही छोड़ देना चाहिए। माया-मुक्त होने से ही जीव सुखमय बन सकता है।

लोभ- सब रिपुओं से लोभ महाभयंकर रिपु है। अतः जहां तक हो सके, इसे मानव दूर से ही ठुकरा दें। इसकी तृष्णा आकाश की तरह विशाल है। इसके फंदे से फंसकर मानव अपने अस्तित्व को भूल जाता है। जब तक इन कषायों का आवरण रहता है तब तक कोई मुक्त नहीं बन सकता। कषाय विजय ही मुक्ति है।

आचार्य हरिभद्र सूरी ने कहा है कि-

'श्वेताम्बरत्वे न दिगम्बरत्वे।
न तर्क वादे न च तत्व वादे
न पक्षपाताश्रयणाच्च मुक्ति
कषाय मुक्तिः किल मुक्ति रेव'

अर्थात् मुक्ति न श्वेताम्बर में है, न दिगम्बर में, न तर्कवाद में है, न तत्ववाद में और न ही किसी एक पक्ष की सेवा करने में है। वास्तव में क्रोध आदि कषायों से मुक्त होना ही मुक्ति है तथा राग-द्वेष से मुक्त होना ही निर्वाण है। क्रोध आदि कषायों को क्षय किए बिना केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। मुक्ति का एकमात्र साधन है- 'कषाय-विजय'।

चुटकुले

1. वीरू जय से- कुछ लोग दो-दो शादियां क्यों करते हैं?
जय- दो शादियां करने का बहुत फायदा रहता है। बीवियां हर समय आपस में ही झगड़ा करती रहती हैं, पति से झगडा करने का समय ही नहीं मिलता।

2. टीचर बच्चे को डांटते हुए- यदि मेहनत करोगे तो तभी जीवन में कुछ बन पाओगे।
बच्चा- जी, हमारा गधा तो बरसों से दिन-रात मेहनत करता है, वह जो आज तक कुछ बन नहीं पाया।

3. जय वीरू से- जब तुम बसंती को दिल से नहीं चाहते थे, तो उससे शादी क्यों की?
वीरू- वह मेरी मजबूरी थी।
जय- कैसी मजबूरी थी।
वीरू- मैंने उससे वादा किया था कि मैं उसके लिये दुनियां की सारी दुःख और तकलीफें झेल सकता हूं।

प्रस्तुति : दिव्या

जप का लम्बा समय क्यों?

○ साध्वी मंजुश्री

मन्त्र जाप अक्सर ही एक अवधि या संख्या पर केन्द्रित होता है। वह इसलिए कि जन्म-जन्म से विभावों की लहरों में नहाता आया मन झट-पट साधक के कहने से या मन्त्र-प्रदाता के आदेश मात्र से मज्जागत संस्कारों को कैसे छोड़ दे! साधना की थपकियां पाकर ही तो वह वहां रमने लगेगा। इसीलिए साधक को अक्सर लम्बे समय तक का मन्त्र जाप बताया जाता है। साथ ही संख्या निर्धारण भी कर दिया जाता है।

मन को साधने के लिए सबसे पहले कहा गया है- साधक, संकल्प लो- 'मंत्र' साधयामि किं वा देहं पातयामि।'- मैं मन्त्र साधूंगा चाहे इसको साधते हुए मेरी देह बिखर जाय।

इतना दृढ़ संकल्प लेकर मन्त्र जाप करने वाले का मन कैसे खोएगा विकल्पों में! क्यों नहीं उसका मन्त्र सिद्ध होगा?

एक उदाहरण देती हूं। यह मदद देगा विषय को समझने में।

दो तपस्वी थे। तपस्या करते-करते बहुत समय हो गया था। नारदजी उधर से गुजर रहे थे। दोनों ने उनसे कहा- 'नारदप्रवर, ब्रह्माजी से जरा पूछकर बताना कि हमारी मुक्ति कब होगी? अलग-अलग बैठ गए दोनों तपस्वी कि ब्रह्मा द्वारा बताया उत्तर दूसरा तपस्वी न सुन पाये। नारदजी ब्रह्मा के पास से लौटे। पीपल के वृक्ष के नीचे एक तपस्वी बैठा था। नारदजी ने उससे कहा- 'मुनिवर, आपकी मुक्ति में अभी सात जन्मों की देरी है।'

नारदजी का उत्तर सुनकर तपस्वी मुनि को गुस्सा आ गया। कहने लगे- 'नारद जी, यह लो कमण्डल ओर यह लो तुम्बी। सात जन्म किसने देखे! मुझे मुक्ति पाने का मोह नहीं है।' कमण्डल और तुम्बी वहीं पटककर वे संसार के भोग भोगने के लिए चल पड़े।

नारदजी फिक्र में पड़ गये कि मैंने अच्छा ब्रह्माजी का संदेश सुनाया। कुछ देर सोचते रहे कि दूसरे तपस्वी को उसकी मुक्ति की बात बताऊं? अन्त में उन्होंने निश्चय किया- 'जिसका जो सन्देश है, बता ही देना चाहिए। उस पर जैसी प्रतिक्रिया हो मुझे क्या! मैं तो सन्देशवाहक हूं।'

नारदजी दूसरे तपस्वी के पास गए। तपस्वी नारदजी को देखकर खड़े हो गये। घास के आसन पर बिठलाया और ब्रह्माजी का उत्तर सुनने को उत्सुक हुए। नारदजी ने कहा- 'ऋषिवर' आपकी मुक्ति में अभी इस पेड़ के पत्तों जितने जन्म लेने बकाया हैं।

नारदजी का उत्तर सुन दूसरे तपस्वी नाचने लगे। कृतज्ञता से भर गये। बोले- 'नारदजी, आज मेरी खुशी अनन्त हो गयी।'

नारदजी ने प्रश्न किया 'ऋषिवर'! आप इतने आनन्दित क्यों हैं?'

'इसलिए कि बे-अन्त जन्म-मरण अन्त में केन्द्रित हो गया। सागर का किनारा आ लगा। अब पहुंचा पार, इस आशा उम्मीद में कि अनन्त जन्मों का अन्त हो जाएगा। मेरा नृत्य इस खुशी का उत्सव-नृत्य है।'

कविता

-आचार्यश्री रूपचन्द्र

जब से चलता आ रहा है समय,
ठीक तब से
मैं भी हूँ एक यात्रा पर।
न आज तक समय थका है,
न थका हूँ मैं।
न आज तक समय रुका है,
न रुका हूँ मैं।
चट्टानों/तूफानों/रेगिस्तानों के
समक्ष
न आज तक समय झुका है,
न झुका हूँ मैं।
फिर भी
जब तुम कहते हो-
समय है बलवान्,
समय है महान्,
तब लगता है मुझे
नहीं है तुम्हें मेरी अस्मिता का
ज्ञान।

जब-जब जिया है
मैंने कालजयी क्षणों को,
समय ने
पाई है मेरे से अपनी पहचान।
मिला है उसे
मेरे से ही
अपने होने का इतिहास-प्रमाण।
समय है अस्तित्व
मैं हूँ उसका व्यक्तित्व।
जब दोनों अलग हैं ही नहीं,
फिर कैसे होगी अलग-अलग
पहचान?
और कैसे तय करोगे तुम-
कौन है बलवान्,
कौन है महान्?

ब्रह्मवादिनी गार्गी की कथा

गतांक से आगे–

''यह वायु तो एक ही-सी बहती है, फिर किस प्रकार हुई?''

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, ''वायु बहती भी है और इसी में सब कुछ विकास को प्राप्त होता है, अतः यह डेढ़ ही है।''

''एक देव कौन है?''

''प्राण! इसी को ब्रह्म भी कहते हैं।''

शाकल्य ने तर्क दिया, ''पृथ्वी ही जिसका पवित्र विश्राम-स्थल है तथा जो दर्शन शक्ति और संकल्प-विकल्प का साधन है, जो भी उस पुरुष को संपूर्ण आध्यात्मिक-कार्य कारण समूह का परम आश्रय मानता है, वही ज्ञाता है। तुम तो बिना जाने ही पंडित होने का अभिमान कर रहे हो।''

याज्ञवल्क्य ने कहा– ''जिसे तुम संपूर्ण आध्यात्मिक-कार्य कारण समूह का आश्रय कह रहे हो, उस पुरुष को तो मैं भी जानता हूं, यह जो शरीरधारी पुरुष आत्मा है, वही वह है, जो तुम बता रहे हो और बोलो, क्या कहना चाहते हो?''

शाकल्य ने पूछा– ''अच्छा यह बताओ। दूसरा देवता कौन है?''

''अमृत।''

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया।

शाकल्य ने फिर से प्रश्न दागा, ''याज्ञवल्क्य, बताओ। काम ही जिसका आराध्य स्थल है, हृदय लोक और मन ज्योति है, उस पुरुष को जो संपूर्ण आध्यात्मिक कार्य-कारण समूह का परम आश्रय जाना जाता है, वही ज्ञाता है। कौन है वह?''

''हां, मैं उसे भी जानता हूं। कामरूप पुरुष ही है वह।''

''उसका देवता कौन है?''

''स्त्रियां ही उसका देवता हैं।''

''रूप जिसका आश्रय है, चक्षुलोक और मन ज्योति है, उस परमात्मा को जानते हो तुम?''

''हां, जानता हूं, वह आदित्य में विद्यमान पुरुष है।''

''भला बताओ तो, कौन है उसका देवता?''

''उसका देवता है– सत्य।''

''आकाश ही जिसका परम आश्रय है, श्रोण लोक है और मन ज्योति है, उस परम आश्रय को जानते हो तुम?''

''जानता हूं। जो भी कर्णेंद्रिय-संबंधी सुनने वाला पुरुष है, वही वह परम आश्रय है।''

''उसका देवता कौन है?''

''उसका देवता है- दिशाएं।''

''तम (अंधेरा) ही जिसका आश्रय है हृदय लोक है, मन ज्योति है, उस परम आश्रय को जानते हो तुम?''

''बिल्कुल जानता हूं, जो भी छायामय पुरुष है, वही यह है।''

''उसका देवता कौन है?''

''उसका देवता है- मृत्यु।''

''रूप ही जिसका आश्रय स्थान है, नेत्र लोक है, मन ज्योति है, उस परम आश्रम का ज्ञान है तुमको?''

''हां है। जो भी यह दर्पण के भीतर पुरुष है, वही तो है यह।''

''बताओ तो, कौन है उसका देवता?''

''उसका देवता है- असु। असु अर्थात् प्राण।''

''जल ही जिसका आधार है, हृदय लोक है, मन ज्योति है, उस परम आश्रय पुरुष को जानते हो तुम?''

''हां। जो भी यह जल में पुरुष है, वही वह परम आश्रय पुरुष है।''

''उसका देवता कौन है?''

''वरुण ही उसका देवता है।''

''कार्य ही जिसका निवास है, हृदय लोक है, मन ज्योति है, उस परम आश्रय पुरुष को भी जानते हो तुम?''

''हां, जानता हूं। जो भी यह पुत्र-रूप पुरुष है, वही यह है।''

''उसका देवता कौन है?''

''प्रजापति ही उसका देवता है।''

शाकल्य के प्रश्नों से तंग आकर याज्ञवल्क्य ने कहा, ''अरे शाकल्य! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि इन ब्राह्मणों ने निश्चय ही तुम्हें अंगारे निकालने वाला चिमटा बना रखा है।''

शाकल्य यह सुनकर कहने लगा, ''याज्ञवल्क्य! कुरु-पांचाल देश के इन ब्राह्मणों पर तुम इस प्रकार का आक्षेप कर रहे हो, सो क्या तुम ब्रह्मवेत्ता हो?''

याज्ञवल्क्य बोले, ''मेरा ब्रह्मज्ञान यह है कि मैं देवता ओर उसकी प्रतिष्ठा सहित सभी दिशाओं का ज्ञान रखता हूं।''

शाकल्य ने प्रश्न किया, ''यदि तुम देवता और प्रतिष्ठा सहित सभी दिशाओं का ज्ञान रखते हो तो बताओ, इस पूर्व दिशा में तुम किस देवता से युक्त हो?''

''मैं वहां सूर्य देवता से युक्त हूं। याज्ञवल्कय ने उत्तर दिया।

''सूर्य किसमें प्रतिष्ठित है?''

''नेत्र में।''

''नेत्र किसमें प्रतिष्ठित है?''

''रूपों में, क्योंकि पुरुष नेत्रों से ही रूपों को देखता है।''

''रूप किसमें प्रतिष्ठित है?''

''हृदय में, क्योंकि पुरुष हृदय से ही रूपों को जानता है।''

शाकल्य बोला, ''ठीक है, अच्छा यह बताओ कि इस दक्षिण दिशा में तुम किस देवता वाले हो?''

उत्तर मिला, ''यम देवता वाला।''

''यम किसमें प्रतिष्ठित है?''

''यज्ञ में।''

''और यज्ञ किसमें प्रतिष्ठित है?''

''यज्ञ प्रतिष्ठित है दक्षिणा में।''

''दक्षिणा किसमें प्रतिष्ठित है?''

''श्रद्धा में, क्योंकि जब पुरुष श्रद्धा करता है, तभी दक्षिणा देता है।''

शाकल्य आगे बोला, ठीक है, अब यह बताओ कि पश्चिम दिशा में तुम किस देवता वाले हो?''

''याज्ञवल्क्य का उत्तर था, ''पश्चिम दिशा में मैं वरुण देवता वाला हूं।''

''वरुण किसमें प्रतिष्ठित है?''

''जल में।''

''जल किसमें प्रतिष्ठित है?''?

''वीर्य में।''

''और वीर्य किसमें प्रतिष्ठित है?''

''हृदय में। इसीलिए पिता के अनुरूप उत्पन्न हुए पुत्र को लोग कहते हैं कि यह मानो पिता के हृदय से ही उत्पन्न है।''

शाकल्य ने फिर पूछा- ''ठीक है, अच्छा यह बताओ कि उत्तर दिशा में तुम किस देवता वाले हो?''

''सोम देवता वाला।'' याज्ञवल्क्य का उत्तर था।

''सोम किसमें प्रतिष्ठित है?''

''दीक्षा में।''

''और दीक्षा किसमें प्रतिष्ठित है?''

''सत्य में, इसलिए दीक्षा ग्रहण करने वाले से कहा जाता है कि वह सत्य बोले।''

''सत्य किसमें प्रतिष्ठित है?''

''हृदय में, क्योंकि पुरुष हृदय से ही सत्य को जानता है।''

शाकल्य का अगला प्रश्न हुआ, ''अच्छा याज्ञवल्क्य! अब यह बताओ कि इस ध्रुवा (अंतरिक्ष) दिशा में तुम कौन-से देवता वाले हो?''

''इस दिशा में मैं अग्नि देवता वाला हूं।'' याज्ञवल्क्य का उत्तर था।

''अग्नि किसमें प्रतिष्ठित है?''

''वाक् में।''

''वाक् किसमें प्रतिष्ठित है?''

''हृदय में।''

''हृदय किसमें प्रतिष्ठित है?''

''याज्ञवल्क्य ने कहा, ''प्रेत।'' फिर बोले, ''जिस समय तुम इसे हमसे अलग मानते हो, उस समय यदि यह हृदय से अलग हो जाएं तो इस शरीर को कुत्ते खा जाएं अथवा यह पक्षियों का भोजन बने।''

शाकल्य ने पूछा, '' तम अर्थात् यह शरीर और आत्मा (हृदय) किसमें प्रतिष्ठित है?''

''प्राण में।''

''प्राण किसमें प्रतिष्ठित है?''

''अपान में।''

''अपान किसमें प्रतिष्ठित है?''

''व्यान में।''

''व्यान किसमें प्रतिष्ठित है?''

''समान में।''

इतना कहकर याज्ञवल्क्य ने कहा- ''अरे शाकल्य! बार-बार प्रश्न क्या करता है? जिस आत्मा का नेति-नेति कहकर बखान किया गया है, उस आत्मा को न तो ग्रहण किया जा सकता है, न वह नष्ट होती है, उसे कोई काट भी नहीं सकता। पृथ्वी आदि आठ आश्रय स्थल हैं, अग्नि आदि आठ लोक हैं, अमृत आदि आठ देव हैं और आदि आठ पुरुष हैं। वह जो उन पुरुषों को निश्चयपूर्वक जानकर उनका अपने हृदय में उपसंहार करके परिवर्तनशील धर्मों (कार्य-व्यापार) को लांघ चुका है, उपनिषदों में बताए गए उस पुरुष के बारे में मैं तुमसे पूछता हूं। अगर तुम उसके बारे में स्पष्ट रूप से मुझे कुछ नहीं बताओगे तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग हो जाएगा।''

शाकल्य वह सब नहीं जानते थे, अतः नहीं बता सका। फलस्वरूप उसका मस्तक धड़ से अलग होकर भूमि पर गिर पड़ा।

अब याज्ञवल्क्य ने वहां उपस्थित अन्य ब्राह्मणों को संबोधित कर उनसे कहा, ''पूजनीय ब्राह्मणों! आप में से जिसकी इच्छा हो, वह मुझसे प्रश्न करे अथवा आप सभी मिलकर मुझसे प्रश्न करें और यदि आप चाहें तो मैं आप में से किसी एक से प्रश्न करूं या सामूहिक रूप से सभी से प्रश्न करूं। जो आप उचित समझें, मुझे आदेश करें।''

किंतु ब्राह्मणों में साहस न हुआ। तब याज्ञवल्क्य ने स्वयं ही प्रश्न द्वारा उन्हें ब्रह्म के संबंध में ज्ञान कराया।

याज्ञवल्क्य ने कहा- ''जीव के शरीर को विशाल वृक्ष की तरह समझो। वृक्ष के पत्ते होते हैं और पुरुष के शरीर में रोम (रोएं) होते हैं, वृक्ष में छाल होती है और शरीर में त्वचा होती है। जैसे वृक्ष की छाल से गोंद निकलता है, वैसे ही पुरुष के शरीर की त्वचा में से रक्त निकलता है। जैसे वृक्ष में रेशे, काठ आदि हैं, वैसे ही पुरुष के शरीर में शिराएं, हड्डियां आदि हैं। प्रश्न है कि यदि वृक्ष को काट दिया जाता है तो वह अपने मूल रूप में पुनः और भी नया होकर अंकुरित हो जाता है, इसी प्रकार मनुष्य को यदि मृत्यु मिल जाए तो नए जन्म में मनुष्य किस मूल से उत्पन्न होगा?आप कह सकते हैं कि वीर्य से उत्पन्न होगा, पर ऐसा कहना उचित नहीं, क्योंकि वीर्य तो जीवित पुरुष से ही उत्पन्न होता है, मृतक पुरुष से नहीं। वृक्ष भी केवल तने से ही उत्पन्न नहीं होता,

बीज से भी उत्पन्न होता है, किंतु बीज से उत्पन्न हो जाने वाला वृक्ष भी कट जाने के बाद पुनः अंकुरित हो जाता है, पर यदि वृक्ष को जड़ सहित उखाड़ दिया जाए, तो फिर वह अंकुरित नहीं होगा, किंतु मनुष्य तो मरकर पुनः उत्पन्न होता है, ऐसी दशा में मृत्यु के पश्चात् उसे कौन उत्पन्न करता है? इसका उत्तर यह है कि ब्रह्म ही मनुष्य को उत्पन्न करता है। जैसे वह सारी सृष्टि को उत्पन्न करता है, ब्रह्म स्वयं आनंद रूप है, वह शाश्वत है।''

याज्ञवल्क्य ने फिर उन्हें ब्रह्म के विषय में विस्तार से बताया। राजा जनक सहित तब वहां उपस्थित सभी ब्राह्मणों ने उन्हें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता मान लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने याज्ञवल्क्य की विद्वता से प्रसन्न होकर उन्हें बहुस-सी गायें और अनेक प्रकार के उपहार देकर वहां से विदा किया।

प्रस्तुति : साध्वी वसुमती

कविता

गुरुदेव के प्रति

गुरू की छाया में
शरण जो पा गया,
उसके जीवन में
सुमंगल आ गया।
गुरू कृपा तो सबसे बड़ा उपहार है
गुरू है खेवनहार तो नैया पार है
प्रेम का पावन उजाला छा गया
उसके जीवन में सुमंगल आ गया।
गुरू रचा है श्वास में प्रश्वास में
वो तो बसा है प्राणों में विश्वास में
शांति-सुख अमृतमय बरसा गया
उसके जीवन में सुमंगल आ गया।
हमें ही क्या उनको हमारा ध्यान है
गुरू है देवता गुरू भगवान है
प्राणों का पंछी बसेरा पा गया
उसके जीवन में सुमंगल आ गया।
गुरू नहीं है मूर्त वो तो एक शक्ति है
माने गर आज्ञा तो सच्ची भक्ति है
धन्य है जिसकों यह पथ आ गया
उसके जीवन में सुमंगल आ गया।
गुरू साक्षात ब्रम्हा का ही रूप है
उसकी करूणा कृपा
अमिट अरूप है
किया समर्पण तो शिष्य
परम पद पा गया
उसके जीवन में सुंमगल आ गया
गुरू की छाया में जो शरण पा गया।

-मंजूबाई जैन

दिल व दिमाग को करे ठंड़ा, तिल के तेल की मालिश

तिल के तेल में तांबा, मैगनीज, कैल्शियम, जिंक और मैग्नीशियम बहुत अधिक मात्रा में होते हैं। यह हड्डियों के खनिज घनत्व और स्वास्थ्य को बढ़ाता है। नियमित मालिश गठिया के दर्द से राहत प्रदान कर सकती है।

तेल मालिश हमेशा तनाव से मुक्ति और शांति प्रदान करता है लेकिन तथ्य यह है कि वास्तव में यह स्थिति तभी प्राप्त की जा सकती है जब तिल के तेल को प्रमुख घटक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

शिरोधारा के समय तिल के तेल को पसंद किया जाता है क्योंकि यह तंत्रिका उत्थान और दिव्य शांति की दिशा में हमें कैसे लाभ पहुंचाता है, इसका आयुर्वेद में उल्लेख किया गया है। शिरोधारा आयुर्वेद चिकित्सा का एक रूप है जिसमें मार्थ पर धीरे-धीरे तरल पदार्थ डालने का कार्य शामिल होता है। शिरोधारा में कौन सा तरल पदार्थ इस्तेमाल किया जाएगा यह इस पर निर्भर करता है कि क्या इलाज किया जा रहा है। इसमें तेल, दूध, छाछ, नारियल पानी या यहां तक कि सादे पानी को भी शामिल कर सकते हैं। जब शिरोधारा में तिल के तेल का इस्तेमाल किया जाता है, तब तंत्रिका शांति की स्वर्गीय अनुभूति होती है। तिल का तेल ऐसा प्रभाव डालता है कि तंत्रिकाएं उसके परिणाम में पूरे शरीर को तनाव से मुक्ति के संवेदन भेजने लगती हैं और कुछ ही समय के भीतर पूरा शरीर एक शांति की स्थिति में आ जाता है। कई प्रकार की स्थितियों के इलाज के लिए शिरोधारा का इस्तेमाल किया गया है जिनमें नेत्र रोग, साइनसाइटिस, एलर्जिक राइनाईटिस, बालों की सफेदी, मस्तिष्क, बालों की सफेदी, मस्तिष्क संबंधी विकार, स्मृति हानि, अनिद्रा, सुनवाई हानि, कक्कर आना, मिनियर का रोग सहित सोरायसिस जैसे त्वचा रोगों के कुछ प्रकार शामिल हैं।

इसे अपने आरामदायक गुणों के लिए गैर औषधीय रूप से स्पा में भी प्रयोग किया जाता है। चूंकि तिल का तेल पौष्टिक

खनिज और विटामिनों से भरा हुआ होता है, इसीलिए जब हम गर्म तेल मालिश के लिए इस्तेमाल करते हैं तब हमारा शरीर एक स्पंज की तरह इसे सोख लेता है। याद रखें यदि तिल के तेल की मालिश दैनिक नहीं हो पाती हैं तो एक सप्ताह में एक बार या दो बार करके तनाव से मुक्त रहा जा सकता हैं। मालिस के बाद 10 से 15 मिनट का आराम जरूरी होता है।

गर्म तिल के तेल से आयुर्वेदिक मालिश के लाभ।

• जड़ी-बूटियों के साथ मिश्रित तिल का तेल 2 से 3 साल तक के बच्चों के लिए दैनिक आयुर्वेदिक मालिश के लिए प्रयोग किया जाता है। यह मसाज उनके विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। बच्चे का दैनिक आयुर्वेदिक मालिश उसकी हड्डियों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और बच्चे के शरीर को ठोस और मजबूत बनाता है।

• तिल का तेल एंटीआक्सिडेंट, विटामिन ई से भरा हुआ होता है और यह उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा कर देता है। नियमित मालिश हमें उम्र में सालों-साल छोटा प्रतीत करा सकता है।

• तिल के तेल की उच्च चिपचिपाहट त्वचा में गहराई तक समा जाता है। यह त्वचा को भीतर से पोषण देने में मदद करता है, क्षतिग्रस्त त्वचा कोशिकाओं की मरम्मत करता और इसे एक स्वस्थ चमक देता है।

• तिल का तेल एक प्राकृतिक सनस्क्रीन है। जब सड़क पर निकलने से पहले आपके शरीर के खुले भागों पर लगाया जाता है तो यह सूर्य की किरणों को रोकता है।

• तिल का तेल फैटी एसिड से समृद्ध होता है। यह इसे अत्यधिक शुष्क त्वचा की मरम्मत के लिए फायदेमंद बना देता है, दरारों, सूखे घुटनों और कोहनियों को भर देता है। सूखी और सुस्त त्वचा नरम और चिकनी त्वचा में बदल जाती है।

• तिल का तेल बालों की स्थितियों का इलाज करने में प्रभावी ढंग से काम करता है- जैसे बालों का झड़ना, रूसी, सूखी खोपड़ी ओर समय से पहले पकना। आपके शरीर की मालिश के साथ सिर की मालिश बालों को चमकदार और मजबूत बनाते हुए खोपड़ी क्षेत्र में रक्त परिसंचरण में सुधार कर सकता है।

• तिल का तेल शरीर और खोपड़ी को एक ठंडा और आरामदायक प्रभाव देता है ओर तनाव, भकान और दर्द को कम करता है।

• तिल के तेल की पेट पर ठीक से किया गया मालिश पाचन में सुधार और कब्ज, गैस या अपच के मामले में राहत प्रदान कर सकता है।

• जोड़ों और सूजन वाले क्षेत्रों पर तिल के तेल की मालिश दर्द को कम करते हुए जोड़ों औ हड्डियों के मजबूत बनाने में मदद करता है।

-प्रस्तुति : अरूण तिवारी

दीप जलाओगे तो रोशनी होगी

क्षेत्रपाल श्री भौमियाजी- प्रतिष्ठा पर पूज्य आचार्यश्री के उद्‌गार

6-7 अगस्त 2016, सिद्धाचलम्, न्यूजर्सी, अमेरिका में क्षेत्रपाल श्री भौमियाजी-प्रतिष्ठा के अवसर पर पूज्य आचार्यश्री रूपचन्द्रजी ने कहा- रोशनी तभी होगी जब आप दीप जलाओगे। यह हमारा सद्‌भाग्य है हमें विरासत में दीप, तेल और बाती सब कुछ मिला है। लेकिन रोशनी कभी विरासत में नहीं मिलती। उसके लिए तो दीप को जलना होता है। हमारी भूल यही हो जाती है। हम माटी के दीये को मार्बल का बना देते हैं, चांदी-सोने और हीरों का भी बना देते हैं। सुबह-शाम दीप की आरती भी कर लेते हैं। समय-समय पर संत-विद्वानों के प्रवचन भी रख लेते हैं। जिन महापुरुषों ने उस दीप में से रोशनी प्रकट की, उनके गुण-गान भी कर लेते हैं। किन्तु अपने दीप को प्रज्ज्वलित करना ही भूल जाते हैं। समझना यह है आपके जीवन में रोशनी तभी आएगी, जब आप अपने दीये को जलाएंगे। अगर आप ऐसा नहीं करते हैं तो विरासत में मिले दीप-तेल-बाती के बावजूद आपके आसपास फेला अंधियारा दूर नहीं होगा।

आपने कहा- क्षेत्रपाल श्री भौमियाजी तीर्थाधिराज श्री सम्मेद शिखरजी, झारखंड के अधिष्ठायक देवता हैं। श्री शिखरजी की तीर्थ-यात्रा आपकी कृपा से ही निर्विघ्न हो पाती है। अमेरिका की धरती पर दो वर्ष पूर्व पूज्य आचार्यश्री सुशील मुनिजी द्वारा स्थापित सिद्धाचलम् में श्री शिखरजी की रचना (Riplica) का निर्माण हुआ। किन्तु उसके साथ श्री भौमियाजी की प्रतिष्ठा भी आवश्यक थी। इस बार वह कभी भी पूरी हो रही है-

श्री भौमियाजी-प्रतिष्ठा के साथ शिखरजी के द्वार खुल रहे हैं,
ऐसा समझें बीस तीर्थंकरों के दरबार खुल रहे हैं।
किन्तु आशीर्वाद केवल उन तक पहुंच पाएगा,
आराधना के साथ जिनके अहंकार धुल रहे हैं।

श्री भौमियाजी क्षेत्रपाल की प्रतिष्ठा के साथ-साथ सिद्धाचलम् मंदिर-प्रतिष्ठा का यह रजत-जयंती वर्ष भी है। हजारों की संख्या में श्रद्धालु जनों ने बड़ी धूमधाम तथा हर्षोल्लास से इस समारोह में भाग लिया।

पूज्य गुरूदेव ने शिष्य अरूण योगी के साथ 19-20 जुलाई को पूज्या प्रवर्तिनी साध्वीश्री मंजुलाश्री जी आदि साध्वी समुदाय की मंगल कामनाओं के साथ अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। मानव

मंदिर गुरूकुल के बालक तथा स्टाफ-सदस्य बड़ी संख्या में पूज्यवर को बिदाई देने एअर-पोर्ट आए। उनके जय-जय के नाद से पूरा एअर-पोर्ट गूंज उठा।

अमेरिका में पहला पड़ाव बर्लिंग्टन, वरमोंट रहा, जहां राजीव-जौली सैनी तथा दीपक-विक्की सैनी परिवार ने पूरी जिम्मेवारी से प्रवास का सेवा-लाभ लिया। दूसरा पड़ाव न्यूयार्क स्टेट की राजधानी अल्बनी में रहा। डॉ. बंशी सुशीला मेहता द्वारा आयोजित योगा क्लास तथा प्रवचन का भरपूर आनंद भारतीय समुदाय ने लिया। तीसरा पड़ाव लिविंग्स्टन, न्यूजर्सी में श्री हेमेन्द्र दक्षा पटेल के आवास पर रहा। इस परिवार की सेवाएं दिल्ली मानव मंदिर, जैन आश्रम का सुखद अहसास कराती है। वहां योगाभ्यास और धर्म-चर्चा में अनेक परिवारों ने लाभ लिया। इसी प्रसंग पर पूज्य गुरूदेव से मधुर मिलन के लिए न्यूयार्क महानगर से श्री राज सौभाग सत्संग मंडल सायला, सौराष्ट्र के प्रमुख श्री नलिन भाई कोठारी का अपने प्रमुख शिष्यों के साथ अचानक आगमन सबको रोमांचित करने वाला था।

सिद्धाचलम्-प्रतिष्ठा के पश्चात् पूज्यवर का तीन दिवसीय प्रवास न्यूयार्क महानगर में रहा। डॉ. मुकेश अजमेरा के आवास पर श्रीमद् राजचन्द्रजी द्वारा लिखित आत्म-सिद्धि शास्त्र पर आत्मा-विषयक विशेष स्वाध्याय रहा। एक विशेष प्रवचन तथा योगाभ्यास-कार्यक्रम समाज-सेवी श्री के.के. मेहता के आवास पर रहा, जिसमें बड़ी संख्या में समाज ने भाग लिया। इसमें विशाल स्तर पर निकट भविष्य में साप्ताहिक योग-शिविर रखने का निर्णय लिया गया।

न्यूयार्क के पश्चात् अगला पड़ाव ह्युष्टन, टेक्सास रहा। मौन सेवाभावी श्री वीरेन्द्र भाई (स्वर्गीय) श्रीमती भारती बेन कोठारी परिवार की वर्षों से पूज्य गुरूदेव के साथ जुड़ी श्रद्धा-सिक्त अनमोल सेवायें जग-जाहिर है। यहां पर पूज्य गुरूदेव के तीन विशेष प्रवचन रहे। अपने प्रवचनों में पूज्यवर ने परंपराओं/मान्यताओं और धारणाओं से मुक्त होकर परमात्मा की भक्ति आराधना के लिए मार्ग-दर्शन दिया। आपने कहा- अपने भीतर जमी हुई मान्यताओं/धारणा-ग्रस्त चित्त के कारण ही हम परमात्म-तत्व का अनुभव नहीं कर पाते हैं। इस प्रवास में श्री किशोर-कल्पना दोसी, श्री भूपेश प्रीति सेठ, श्री परिमल प्रतिमा बेन के आवास पर आयोजित योगा-क्लास तथा धर्म-चर्चाओं में श्रद्धा-रसिक परिवारों ने जी भरकर रसास्वादन किया। यहां के योगा-ग्रुप की तीव्र भावना है कि मानव मंदिर मिशन का स्थायी सेंटर यहां पर कार्य-रत हो।

अगला पड़ाव मिडलैण्ड, टेक्सास रहा,

जिसमें पूज्यवर का प्रवचन तथा शिष्य योगी अरूण की योगा-क्लास की प्रभावशाली आयोजना में डॉ. आशुतोष अंजनाजी रस्तोगी की प्रशंसनीय सेवाएं रहीं। श्री अंशु रीनी जैन का भी पूरा सहयोग रहा। भविष्य में योगा रिट्रीट के लिए अनेक व्यक्तियों ने अपने नाम पंजीकृत करवाए। यहां से पूजयवर डलास महानगर पधारे, जहां विशाल श्री हनुमान मंदिर में प्रवचन तथा योगाभ्यास कार्यक्रम रहा। पूज्यवर का प्रवास सेवाभावी श्री सुदर्शन कल्पना मजमुदार के आवास पर रहा। कार्यक्रम की आयोजना कर्मठ श्रीमती मालती पटेल के विशेष प्रयास से हो पाई।

इस प्रकार लगभग पूज्यवर की एक माह की अमेरिका-यात्रा हर महानगर में प्रभावशाली गूंज के साथ आगे बढ रही है। शिष्य योगी अरूण की विनीत सेवाएं तथा योग-प्रशिक्षण की विचक्षण शैली जन-मानस पर अच्छी छाप छोड़ रही है। मानव मंदिर मिशन की शिक्षा, स्वास्थ्य-सेवा, योग तथा गुरूकुल की यशोमयी गाथा सर्वत्र सुनी जा सकती है।

मानव मंदिर मिशन, जैन आश्रम, नई दिल्ली में पूज्या प्रवर्तिनी साध्वीश्री मंजुलाश्रीजी के मार्ग-दर्शन में सहयोगी साध्वियों के विशेष प्रयत्नों से सभी प्रवृत्तियां सराहनीय प्रगति-पथ पर अग्रसर है।

-पूज्य गुरूदेव से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए दायें से- त्रिशला, अपने पोते-आरव के साथ अंजना रस्तोगी, रिमी जैन, पीछे वायें से- योगी अरूण, सनी रस्तोगी, राघव रस्तोगी, आशुतोष रस्तोगी व अंशु जैन, मिडलैंड, टैक्सास (अमेरिका)।

-मध्य में आशीर्वाद प्रदान करते हुए आचार्यश्री रूपचन्द्रजी महाराज, आचार्य योगीशजी, साध्वीगण, मालती पटेल, योगी अरूण, साधक व सुदर्शन मजमुदार, सिद्धायतन, डलास (अमेरिका)।

-सर्वकार्य सिद्धि हनुमान मंदिर के प्रवचनों के पश्चात गुरूदेव का सम्मान करते हुए श्री अनिल गुप्ताजी। साथ में हैं- गुरूदेव के शिष्य यागी अरूण व योगाचार्य रमाकांत जी, डलास (अमेरिका)।

-दो आध्यात्मिक विभुतियों का मिलन पूज्य गुरूदेव आचार्यश्री रूपचन्द्र जी महाराज व भाईश्री नलिन कोठारी जी व शिष्यगण, न्यूजर्सी (अमेरिका)।

-सिद्धाचलम भौंमिया जी के उद्घाटन समारोह के अवसर पर पूज्य गुरूदेव के सान्निध्य में साधु-संत व अन्य गणमान्य जन, न्यूजर्सी (अमेरिका)।

-सिद्धाचलम भौंमिया जी के उद्घाटन समारोह में अपना उद्बोधन देते हुए पूज्य गुरूदेव आचार्यश्री रूपचन्द्र जी महाराज, न्यूजर्सी (अमेरिका)।

-श्री कृष्ण कांत चंद्रा मेहता के आवास पर प्रवचन के पश्चात् मंगलपाठ करते हुए आचार्यवर, न्यूजर्सी (अमेरिका)।

-आचार्यश्री रूपचन्द्रजी महाराज के प्रवचनों का आनंद लेते हुए मिडलैंड, टेक्सास, यू.एस.ए. का समाज।

-आचार्यश्री से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए आलवनी, न्यूयार्क अमेरिका के लोग व योगी अरूण से योग-ध्यान सीखते हुए।

-योगी-अरूण के सान्निध्य में योग-अभ्यास करते मिड-लैंड, टेक्सास, अमेरिका का समाज। वरमॉट, अमेरिका के सैनी परिवार को आशीर्वाद प्रदान करते हुए पूज्य गुरूदेव।

-स्वतंत्रता दिवस पर मानव मंदिर गुरूकुल के बच्चे व स्टाफ महासती मंजुलाश्री जी के सान्निध्य में तिरंगे के साथ। साथ में हैं साध्वियां व स्टाफ, मानव मंदिर परिसर, नई दिल्ली।

-उदय इण्डिया नॉलेज ट्री द्वारा आयोजित विशाल रक्तदान शिविर में बोलते हुए साध्वी समताश्री जी महाराज व मंच पर विद्यमान हैं अन्य गणमान्य।

-मानव मंदिर गुरूकुल व सेवा-धाम रक्षा बंधन का त्यौहार मनाते हुए, मानव मंदिर परिसर, नई दिल्ली।

P. R. No.: DL(S)-17/3082/2015-17
Rgn. No.: DELHIN/2000/2473
Date of Post : 27-28

SEVA-DHAM Plus

Since 1994

.....The Wellness Center

(YOGA, AYURVEDA, NATUROPATHY & PHYSIOTHERAPY)

Relax Your Body, Mind & Soul In A Spiritual Environment

Truly rejuvenating treatment packages through
Relaxing Traditional Kerala Ayurvedic Therapies

KH-57, Ring Road, (Behind Indian Oil Petrol Pump), Sarai Kale Khan, New Delhi - 110013
Ph. : +91-11-2632 0000, +91-11-2632 7911 Fax : +91-11-26821348 Mob. : +91-9868 99 0088, +91-9999 60 9878
Website : www.sevadham.info E-mail : contact@sevadham.info

प्रकाशक व मुद्रक : **श्री अरुण तिवारी,** मानव मंदिर मिशन ट्रष्ट (रजि.) के.एच.–57 जैन आश्रम, रिंग रोड़, सराय काले खाँ, इंडियन ऑयल पेट्रोल पम्प के पीछे, पो. बो.–3240, नई दिल्ली–110013, आई. जी. प्रिन्टर्स 104 (DSIDC) ओखला फेस–1 से मुद्रित।

संपादिका : श्रीमती निर्मला पुगलिया